

प्राचीन भाषाओं (क्लासिक्स) का संकट: प्राचीन भाषाओं के सर्वेक्षण की आवश्यकता

Crisis in the Classics: A Need for a Classics Survey

अनन्या वाजपेयी

Ananya Vajpeyi

अप्रैल April 12, 2010

हाल ही के वर्षों में कोलंबिया विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर शेल्डन पोलॉक ने बताया था कि भारत में संस्कृत ही नहीं बल्कि सभी प्राचीन भाषाओं के अध्ययन का संकट उत्पन्न हो गया है. कई शताब्दियों में फैले हुए अपने समृद्ध इतिहास के बाद ये भाषाएँ आज एक ऐसे मोड़ पर पहुँच गई हैं कि भविष्य में उनके संरक्षण को सुनिश्चित करना संभव नहीं हो पाएगा. वर्ष 2030 तक जब भारत विश्व का सबसे बड़ी आबादी वाला देश हो जाएगा और शायद सबसे अधिक समृद्ध देश भी, वह अपनी असाधारण भाषिक और साहित्यिक विरासत को खो चुका होगा. .

आखिर ऐसे हालात कैसे बने और इस संकट के सही और अनुभवजन्य आयाम क्या हैं? सन् 2002 में पार्थ चटर्जी ने सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद के लिए भारत में समाज विज्ञान संबंधी स्थिति पर एक फ़ील्ड रिपोर्ट प्रस्तुत की थी. इस प्रकार का अध्ययन केवल संस्कृत के लिए ही नहीं, मलयालम, कन्नड़, बंगाली, तमिल, फ़ारसी और ब्रजभाषा जैसी कई अन्य प्राचीन भाषाओं के लिए भी किया जाना चाहिए.

यह हैरानी की बात है कि एक ऐसे देश में जहाँ सभी महत्वपूर्ण राज्य सरकारों के विश्वविद्यालयों और राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में दर्जनों संस्कृत विभाग हैं, ब्रिटिश सरकार के जमाने से चलने वाले अनेक संस्कृत महाविद्यालय हैं और जहाँ *मठों*, *पाठशालाओं* और *विद्यापीठों* का जाल बिछा हुआ है और जो एक प्रकार से समानांतर शैक्षणिक अर्थव्यवस्था (विशेषकर दक्षिण भारत में) चलाते हैं और जहाँ लाखों स्कूली बच्चे माध्यमिक विद्यालय के स्तर तक अनिवार्य विषय के रूप में संस्कृत पढ़ते हैं (अर्थात् हजारों स्कूलों के संस्कृत अध्यापक हैं), और जहाँ घरों में, पुस्तकालयों में, पुरातत्व संग्रहालयों में और मंदिरों में अनगिनत पाठसामग्री संग्रहीत है, वहाँ पर संस्कृत में ज्ञान-विज्ञान पढ़ने और उसे तैयार करने और संरक्षित करने के लिए आवश्यक मूलभूत सुविधाएँ भी मौजूद नहीं हैं. न तो पिछले युग की जड़ता संस्कृत को बचा सकी और न ही कोई नई पहल.

भारत में इस समस्या का मूल कारण धन की कमी नहीं, बल्कि दृष्टि का अभाव है. बदलते हुए राजनैतिक हितों के कारण हालात बिगड़ते रहे और उत्कृष्टता के केंद्र बर्बाद

होते चले गए. कर्मचारियों की व्यक्तिगत निष्ठा के कारण 1990 के आरंभिक दशक तक कुछ संस्थाएँ बची रहीं. तुरत सोचने पर इनमें से कुछ संस्थाओं के नाम याद आते हैं : पुणे विद्यापीठ, डक्कन कॉलेज और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय. भले ही कॉन्ग्रेस नीत सरकार हो या भाजपा नीत सरकार या फिर वामपंथियों की सरकार हो,सभी के हाथों संस्कृत की उपेक्षा और गलतबयानी होती रही. पिछले बीस वर्षों में कभी-भी राजनैतिक वातावरण ऐसा निर्मित नहीं हुआ कि उससे इस भाषा के हित में कुछ किया गया हो या ज्ञान के इस विस्मयकारी भंडार के संरक्षण के लिए कोई उपाय किया गया हो.

पिछले तीन दशकों से पोलॉक और उनके सहयोगी तीन तरीकों से संस्कृत को लुप्त होने से बचाने के लिए सफलतापूर्वक प्रयास कर रहे हैं: अपने लेखन, अनुसंधान और अध्यापन से; एक छोटे-से किंतु भारी उत्साह से भरे और योग्य छात्रों को वे प्रशिक्षण देते हैं, प्राचीन पाठों का अंग्रेजी में उच्च कोटि का अनुवाद करके प्रकाशित करते हैं और क्ले संस्कृत लाइब्रेरी जैसी सीरीज़ के माध्यम से भी उन्हें प्रकाशित करते हैं.

जापानी भी मुख्यतः बौद्ध धर्म और बौद्ध साहित्य में उसके अवदान के कारण संस्कृत के संरक्षण के लिए यथासंभव उपाय करते हैं,लेकिन यह संकट अंततः तभी दूर हो पाएगा जब इस प्रकार के उपाय भारत में ही किए जाएँगे, क्योंकि अधिकांश पाठ अभी-भी भारत में ही मौजूद हैं,भले ही वे कितने ही बिखरे हुए या बुरी हालत में क्यों न हों. आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत और अन्य प्राचीन भाषाओं के लिए एक तथ्यान्वेषी मिशन शुरू किया जाए जिसके अंतर्गत व्यापक स्तर पर राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण कराया जाए. ज़मीनी स्तर पर बिना बुनियादी काम के इस समस्या को न तो हम समझ सकते हैं और न ही इसका समाधान कर सकते हैं, जिसके कारण भारत में प्राचीन विरासत के अध्ययन में बाधा उत्पन्न हो रही है. जब भी हमें मात्र सूचनाएँ चाहिए होती हैं, हम उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश लोगों द्वारा संकलित आंकड़ों की ओर लपकते हैं या फिर उन सूचनाओं की ओर ताकते हैं, जिन्हें भारत के उन प्राच्यविद्या विशारदों ने संकलित किया था जो पहले तो ब्रिटिश के लिए काम करते थे और बाद में नेहरू प्रशासन के लिए. कोई अद्यतन और सटीक खाका नहीं है, कोई दशक-वार अखिल भारतीय संस्कृत रिपोर्ट 1990, 2000, या 2010 भी नहीं है.

प्राचीन भाषाओं के प्रति सद्भाव में कठिनाई

कुसुम पावडे गैर ब्राह्मण परिवार में जन्मी एक महिला हैं. उन्होंने एक बहुत बढ़िया लेख “मेरी संस्कृत की कहानी” लिखा है. इस लेख में उन्होंने संस्कृत की पढ़ाई करने और विश्वविद्यालय में प्राध्यापकीय पद पाने के लिए अपने संघर्ष का वर्णन किया है जो उन्हें महाराष्ट्र में गैर ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण झेलना पड़ा. उनकी कहानी उस समय की है जब संस्कृत की पढ़ाई ब्राह्मण पुरुषों तक ही सीमित थी; पावडे को यह संघर्ष जाति और लिंग दोनों ही स्तरों पर झेलना पड़ा था. जब मैंने महाराष्ट्र में डॉक्टरेट की अपनी पढ़ाई के सिलसिले में उनका पैंतीस-चालीस साल पहले अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद लिखा यह निबंध पहले-पहल पढ़ा तो अपनी भिन्न सामाजिक और आर्थिक स्थितियों के बावजूद मुझे लगा कि आज भी संस्कृत की पढ़ाई-लिखाई करना उतना ही है. सिर्फ एक ही जगह ऐसी थी जहाँ संस्कृत की पढ़ाई निर्बाध रूप में की जा सकती थी और वह जगह थी शिकागो विश्वविद्यालय की कक्षा, जहाँ के प्रोफेसर भी अमरीकी थे और छात्र भी. रेजेन्स्टेन पुस्तकालय की पाँचवीं मंज़िल पर स्थित इस कक्षा में हर प्रकार की पाठसामग्री मौजूद थी. नई हो या पुरानी, क्लासिक हो या स्थानीय जनभाषाएँ, भारतीय हो या योरोपीय. आपको जो कुछ भी चाहिए वह सब यहाँ मौजूद था. 1998 और 2003 के बीच मैंने लगभग पाँच साल फ़ील्ड में घूमते हुए बिताए. इस दौरान मैंने पूरे डक्कन और दक्षिण भारत में संस्कृत की पढ़ाई के सभी बड़े केंद्रों को देखा. जब मैं अपना प्रबंध लिखने के लिए शिकागो वापस लौटी तो मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि भारत में पूर्व-आधुनिक भारत के अध्ययन के लिए “वहाँ पर” कोई भी अध्येता नहीं है.

2010 के आरंभ में गुरचरण दास ने मुझसे कहा था कि मुझे अपनी नवीनतम पुस्तक “द डिफ़िकल्टी ऑफ़ बीइंग गुड” (2009) की तैयारी के सिलसिले में अपनी संस्कृत को परिष्कृत करने के लिए अमरीका के विश्वविद्यालयों में जाने पर बहुत चिढ़ हुई थी. 1960 के दशक में दास हार्वर्ड में अंतःस्नातक थे. यहीं पर उन्होंने डेनिएल इनगाल्स के साथ संस्कृत की पढ़ाई की थी. चार दशक के बाद वे इनगाल्स के शेल्डन पोलाक और वेंडी डॉनिगर जैसे छात्रों के साथ अपनी दार्शनिक योग्यता को और प्रखर बनाने के लिए शिकागो विश्वविद्यालय में लौट आए.

जैसे-जैसे हम पीढ़ियों में फैली अपनी आपबीती पर चर्चा कर रहे थे, मैंने दास को बताया कि भारत में संस्कृत की पढ़ाई की कोशिश में मुझे कितनी हताशा और कठिनाइयों को झेलना पड़ा था. मैंने उन्हें बताया कि महाराष्ट्र, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु और बंगाल आदि कई राज्यों के विश्वविद्यालयों, पुस्तकालयों, पुरातत्व संग्रहालयों और पारंपरिक

पाठशालाओं में मुझे किस प्रकार के हादसों से गुजरना पड़ा. मैंने अपनी तमाम बीसवीं उम्र स्नातकीय विद्यालयों में संस्कृत की खोज में बिता दी. यू.के. और अमरीका में मुझे संस्कृत ज़्यादा दिखाई पड़ी, लेकिन भारत में मुझे यह लगातार भरमाती ही रही. दास हैरान होकर मुझे देखते रहे, क्योंकि भारत में क्लासिक भाषा के रूप में संस्कृत की पढाई का उनका अपना अनुभव भी मेरे अनुभव से अलग नहीं था.

अतीत के बिना कोई भविष्य नहीं

यह एक यथार्थ है कि भारत में पूरे देश में ही उच्च शिक्षा संबंधी संस्थाएँ संकट में हैं. हालाँकि क्षति और विनाश की यह स्थिति सर्वव्यापी है, किंतु आपेक्षिक दृष्टि से विज्ञान, समाजविज्ञान और मानविकी की तुलना में तकनीकी और व्यावसायिक विषयों की स्थिति अधिक बेहतर है. मानविकी में भी भाषाओं की स्थिति सबसे खराब है. भारत के सार्वजनिक विश्वविद्यालयों में ज्ञान का क्रम इसी रूप में व्यवस्थित किया गया है.

तर्क दिया जाता है कि ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन सभ्यता और बहुभाषी लोकतंत्र को दृष्टिगत रखते हुए भाषिक विविधता और साहित्यिक समृद्धि भारत की सबसे बड़ी विशेषता है. लेकिन यह कितनी बड़ी विडंबना है कि हमने अपनी भाषाओं और साहित्य को रसातल में धकेल दिया है. भाषाओं पर गर्व और भाषिक पहचान को लेकर की जाने वाली राजनीति तो बढ़ रही है, लेकिन एक भी राजनैतिक विचारधारा ऐसी नहीं है जो हमारी भाषाओं को संरक्षण और पोषण दे सकती हो. इस राजनैतिक प्रक्रिया में और विभिन्न दलों द्वारा दिए जा रहे संस्थागत संरक्षण के नेटवर्क में भी हमारी भाषाएँ अनाथ-सी हो गई हैं.

एक ऐसे समय में जब भारतीय अपनी उन तमाम जीवंत क्षेत्रीय भाषाओं में तो कम से कम प्रवीणता रखते हों जबकि उनके बोलने वालों की संख्या योरोप और एशिया की अनेक महत्वपूर्ण भाषाओं से भी कहीं अधिक है, संस्कृत जैसी "मृत" भाषा की चिंता करना सनकीपन की तरह लगता है. यह भी हो सकता है कि सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में ब्राह्मणों और उच्चवर्ग के लोगों के प्रभाव में कमी आने के कारण ही यह स्वाभाविक हो गया हो कि सदियों तक *सवर्णों* की सत्ता से जुड़ी होने के कारण इस भाषा का पतन शुरू हो गया हो.

लेकिन संस्कृत कभी-भी और कतई महिलाओं, निम्न जातियों, जनजातियों और मुसलमानों जैसे हमारे समाज के कमजोर वर्गों के विरुद्ध ज्ञानपरक हिंसा का साधन नहीं रही. हम चाहें या न चाहें इस भाषा में प्रवीणता हासिल किए बिना और इसकी

पाठसामग्री, पुरातत्व सामग्री और शेष सामग्री के संरक्षण के बिना न तो हम अपने समस्त लिखित इतिहास को रती भर भी समझ सकते हैं और न ही अपने उत्स को खोज सकते हैं. जैसे बीसवीं सदी में साम्यवादी रूस और चीन ने अपने इतिहास को नष्ट और विस्मृत करने की जान-बूझकर कोशिश की थी और प्राचीन संस्कृति से समृद्ध तुर्की और ईरान जैसे नए गणतंत्र वाले देशों ने सेंसरशिप लगाने की कोशिश की थी, क्या भारत भी इसी प्रकार अपनी विरासत को नष्ट और विस्मृत होने देगा. यदि ऐसा होता है तो भारत कभी आगे नहीं बढ़ पाएगा.

क्या स्वाधीन भारत की कल्पना इसकी मूलभूत और निर्विवाद पाठसामग्री के बिना की जा सकती है, भले ही वह प्राचीन हो या आधुनिक, उच्चवर्ग का हो या समाज से बहिष्कृत वर्ग का, बुद्ध के उपदेश हों या अशोक के शिलालेख, व्यास और बाल्मीकि के महाकाव्य हों, सूफियों के गीत हों या भक्ति साहित्य, गुरुओं के पाठ हों या हमारे गणतंत्र का संविधान, गाँधी जी के पत्र हों या अंबेडकर के लेख, नेहरू के भाषण हों या टैगोर का राष्ट्रगीत और ऐसी ही असंख्य गाथाएँ हों जिन्हें हम बार-बार सुनना और याद करना पसंद करते हैं.

भारत के मूल्य जितने समृद्ध हैं, उसके संसाधन भी उतने ही समृद्ध हैं. यह एक ऐसा देश भी है जिसके पास भिन्न-भिन्न ध्वनियों और प्रतिध्वनियों का खजाना भरा पड़ा है. क्या भारत कुछेक अच्छे स्कूलों, बढ़िया पुस्तकालयों और शिक्षाविज्ञान के कार्य को निर्बाध रूप में आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक सुविधाओं के निर्माण से बचने के लिए अपनी भाषाओं पर अपना अधिकार खो देगा, अपनी आवाज़ खो देगा, अपनी परंपरा खो देगा, हजारों वर्षों के ज्ञान, ध्यान, अध्यात्म और सौंदर्यशास्त्र की अपनी विरासत और उपलब्धियों को खो देगा और अपने ज्ञान के महानतम भंडार को फेंक देगा. यदि ऐसा होता है तो यह हम सबके लिए शर्म से डूब मरने की बात ही होगी.

मार्च 2010 के आरंभ में सुधा और नारायणमूर्ति (इन्फोसिस टेक्नोलॉजीज के संस्थापक) ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस को मूर्ति क्लासिकल लाइब्रेरी ऑफ़ इंडिया नाम से एक नई सीरीज़ भेंट में दी है. यह सीरीज़ ठीक उसी तरह की है जैसे लेटिन और ग्रीक के लिए एचयूपी की काफ़ी समय से चली आ रही लोएब क्लासिकल लाइब्रेरी और इसकी रेनेसाँ आई टैटी लाइब्रेरी. हमें अपनी प्राचीन भाषाओं को और सामान्यतः अपनी मानवता को और विशेष रूप से संस्कृत को विनाश से अविलंब बचाना होगा. यदि हम आज के युग में

जब संप्रेषण ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, विश्व के नेता बनना चाहते हैं तो हमें अपनी शक्ति के मूल स्रोत स्वरूप 3,000 वर्ष पुरानी अपनी भाषा के महत्व को पहचानना होगा, उसे सम्मान देना होगा और उसका संरक्षण करना होगा.

अनन्या वाजपेयी बोस्टन स्थित मसाचुएट्स विश्वविद्यालय में दक्षिण एशिया का इतिहास पढ़ाती हैं. उनकी शिक्षा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हुई, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हुई, जहाँ उन्होंने रोड्स स्कॉलर के रूप में पढ़ाई की और उनकी शिक्षा शिकागो विश्वविद्यालय में भी हुई. उनकी पुस्तक न्यायसंगत गणराज्य: आधुनिक भारत की राजनैतिक आधारशिलाएँ हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित होगी.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>